

जीवन का अर्थ : अर्थमय जीवन

आजकल अक्सर ऐसी बैठकों में, सभा सम्मेलनों के प्रारंभ में एक दीपक जलाया जाता है। यह शायद प्रतीक है, अंधेरा दूर करने का। दीया जला कर प्रकाश करने का। इसका एक अर्थ यह भी है कि अंधेरा कुछ ज्यादा ही होगा, हम सबके आसपास। यह अंधेरा बाकी समय उतना नहीं दिखता, जितना वह तब दिखता है जब हम अपने मित्रों के साथ ऐसी सभाओं में बैठते हैं। तो दीये से कुछ अंधेरा दूर होता होगा और शायद आपस में इस तरह से बैठने से, कुछ अच्छी बातचीत से, विचार-विमर्श से भी अंधेरा कुछ छंटता ही होगा। शायद साथ चाय, कॉफी पीने से भी। ऐसा कहना थोड़ा हल्का लगे तो इसमें संस्कृत का वजन भी डाला जा सकता है : ओम सहना ववतु, सहनौ भुनक्तु आदि। दीया जलाने का यह चलन कब शुरू हुआ होगा, ठीक कहा नहीं जा सकता। इससे मिलती-जुलती प्रथा ऐसी थी कि जब ऐसी कोई सभा-गोष्ठी होती, अतिथियों के स्वागत में मंच के सामने पहले से ही एक दीया जला कर रख दिया जाता था।

विनोबा किसी जगह गए थे। वहां उन्हें कुछ बोलना भी था। उनके स्वागत में मंच पर एक दीया जला कर रखा गया था। हवा भी चल रही थी। आयोजक बाती की लौ को टिकाए रखने की खूब कोशिश कर रहे थे। आसपास खड़े रह

कर अपनी हथेलियों की आड़ से दीये को जलाए रखने की कोशिश में लगे रहे। सबका ध्यान उसी तरफ। अंधेरा जो भगाना था। पर दीया टिक नहीं पाया। वह बुझ ही गया।

विनोबा ने अपनी बातचीत इसी से शुरू की थी। उन्होंने कहा कि आसपास की हवा जब शांत हो, तभी दीया जलता है। अगर हवा प्रतिकूल रही, हवा जोरों से बहती रहे तो दीपक टिकता नहीं। फिर वे हवा से दीपक पर आए। उन्होंने कहा कि हवा शांत हो पर यदि दीपक में तेल कम पड़ा है तो भी वह टिक नहीं पाता। हवा से दीपक और फिर विनोबा दीपक से मनुष्य पर आते हैं। तेल यानी चिकनाई। स्नेह भी इसी अर्थ में बना शब्द है। वे आगे कहते हैं कि जैसे दीपक में तेल की, स्नेह की जरूरत है, वैसे ही मनुष्य में भी, हम सबके भीतर भी स्नेह की जरूरत है। दीपक जलते रहने के लिए बाहर की हवा भी शांत होनी चाहिए और तेल भी होना चाहिए। उसी तरह समाज की रचना भी शांतिमय होनी चाहिए और हम सब में भी स्नेह की मात्रा भरपूर होनी चाहिए। तब जलता रह पाता है हमारा यह दीया। जीवन का दीया भी।

आज हम जीवन का अर्थ जानने मिल बैठे हैं। जीवन तो हम सबका है ही। और इस जीवन का अर्थ बताने की जिम्मेदारी विजयजी ने मुझे अकेले पर छोड़ दी है ! इसलिए सबसे पहले तो मुझे खुद अपनी पोल आप सबके सामने खोल देनी चाहिए : मुझे खुद जीवन का अर्थ नहीं मालूम। सेडिड

संस्था में दास साहब, हमारे दफ्तर में, गांधी शांति प्रतिष्ठान में अमृता बहन जैसे दो-चार गवाह भी हैं जो आपको बताएंगे कि मैं इसके लिए लगातार मना करता रहा हूं। पर यह विजयजी की एक तरह की तानाशाही है कि वे कोई एक बात ठान लें तो उसे पूरा करवा कर ही छोड़ते हैं। तो उनकी इच्छा, उनका हुक्म पूरा करना ही पड़ेगा। इसलिए सबसे पहले यह डिस्क्लेमर !

सामने बैठे हैं कुछ मुझसे कम उमर के साथी। कुछ मुझसे ज्यादा उमर के साथी। पर आज के विषय में, जीवन का अर्थ जानने की कोशिश में हमारी यह उमर कोई काम नहीं आती। वह शायद अनुभव है जो ऐसी बातें सोचने में काम आता होगा। जो जीवन मैंने जी लिया है, मेरे हिसाब से ऐसा अनुभव मेरे पास है नहीं। पिछले हफ्ते मैं पूरे अड़सठ वर्ष का हुआ हूं। कितना बचा होगा शेष जीवन, वह तो पता नहीं। पर आप में से कई लोगों को अभी एक लंबी पारी खेलनी है। इसलिए आज की यह बातचीत आपके किसी काम आ सके—ऐसी विजयजी की इच्छा है। हरि इच्छा, भगवान की इच्छा क्या है, पता नहीं। तो चलिए जिसे खुद तैरना नहीं आता, उससे तैरना सीखते हैं ! मेरा जीवन, मेरा अनुभव कोई गहरा तो है नहीं, इसलिए इतने उथले पानी में तैरना सीखने—सिखाने में यों भी कोई खास डर की बात नहीं होगी !

जहां से हमने बात शुरू की थी, एक बार वापस वहीं लौटें। पिछले कोई 200-300 बरसों से पूरी दुनिया में तेज हवा चल रही है। पहले भी हवा चलती रही होगी पर तब पूरी दुनिया एक दूसरे से बहुत दूर थी और कटी हुई भी थी। उस दुनिया में हवाएं भी टुकड़ों में बंटी रही होंगी। जीवन तब भी कोई आसान न रहा होगा – एक बड़ी आबादी के लिए। फिर भी उतना कठिन और निरुद्देश्य भी नहीं रहा होगा, जितना कि वह आज बना दिखता है। इस दुनिया में हम कितने भी बड़े उद्देश्य को लेकर, लक्ष्य को लेकर दीया जलाते हैं, तेज हवा उसे टिकने नहीं देती। हम तरह-तरह से कोशिश करते हैं उसे अपनी हथेलियों से बचाने की, पर यह हवा है कि हमारी सारी कोशिशों पर पानी फेरती है। शायद हमारे जीवन के दिए में पानी ही ज्यादा होता है, तेल नहीं। स्नेह की कमी होगी इसलिए जीवन बाती चिड़चिड़-तिड़तिड़ ज्यादा करती है, एक-सी संयत होकर जल नहीं पाती। न हम अपना अंधेरा दूर कर पाते हैं, न दूसरे का।

हम पढ़-लिख गए कुछ लोगों को ही जीवन का अर्थ जानने की इच्छा है। हम ही कुछ हैं जो मानते हैं कि अर्थमय जीवन कैसे जीएं। लेकिन हम थोड़ा अपने भीतर झांकें तो हममें से ज्यादातर का जीवन एक तरह से कोल्हू के बैल जैसा ही बना दिया गया है। इसमें कितना हमारा हाथ है, कितना हाथ परिस्थितियों का है, मालूम नहीं। पर हम गोल-गोल घूमते

रहते हैं। आंखों पर पट्टी बांधे। कोल्हू के बैल की पट्टी तो कोई और बांधता है, यहां तो हम खुद अपनी पट्टी बांधते हैं। फिर एक-सा जीवन जीते-जीते थकने लगते हैं। दिल्ली की गाड़ियों को तो सम-विषम, ऑड-ईवन नंबर के ताजे नियम से कुछ आराम भी मिलने लगा है। पर हमारे जीवन की गाड़ी का कोई नंबर नहीं होता। आधार कार्ड बन गया होगा, पैन कार्ड, मतदाता पहचान पत्र होगा। तब भी हमारे जीवन का कोई नंबर नहीं होता है। इसलिए इसे रोज कोल्हू में, एक न दिखने वाले कोल्हू में, अदृश्य कोल्हू में जुतना ही है।

तो एक-सा जीवन जीते जाने की थकान से ही हमें नई-नई बातें सूझती हैं। कोल्हू का बैल अपनी तरक्की, अपने लिए नए अवसर, अपने लिए नए सार्थक अवसर की खोज करता है। नया पैकेज खोजता है। विजयजी चाबुक मार दें तो बैल कोल्हू में घूमते-घूमते अपने जीवन का अर्थ भी खोजने लगता है ! कोल्हू का बैल। वह इस विषय पर भाषण भी देने लगे तो आप अचरज न करें।

कोल्हू कई तरह के हैं, महंगे हैं, कम घेरे के हैं, बड़े-बड़े घेरों के हैं। कई तरह के विचारों के हैं तो कई तरह के धर्मों के हैं। इनमें से हरेक अपने को बाकी बचों से श्रेष्ठ मानता है। सर्वोत्तम। और उसी में अपना जीवन सफल सार्थक हो सकता- ऐसा दावा करता है।

समाज का तना कमजोर होता जाता है पर शाखाओं की संख्या बढ़ती जाती है। पेड़ वाली शाखाएं नहीं। संगठन वाली, संघ वाली शाखाएं। हर विचार, हर धर्म अपना झंडा लहराता है और दूसरे झंडों से ऊपर उठना चाहता है। हम कुछ विचारों को अच्छा मानते हैं, कुछ को घटिया। तो हमें लगता है हमारा विचार कैसे फैले। जीवन की सारी सार्थकता हमें अपने ही विचार को फैलाने में दिखने लगती। हिंसा को परिवर्तन का साधन बनाने वाले भी अपनी शाखाएं बढ़ाते चलते हैं और यही प्रवृत्ति अहिंसा को मानने वालों में भी मिलती है। सबको अपना संगठन बढ़ाना है, बड़ा करना है। बजट बढ़ाना है, कार्यकर्ता बढ़ाना है। कार्यक्रम, गतिविधियां बढ़ानी है। दिन दूनी, रात चौगुनी उन्नति करनी है— इसी में हमें जीवन सफल होता दिखने लगता है।

हमें अपने विचार की कमियां नहीं दिखती। आंख में पट्टी बंधी रहती है। पर दूसरे विचारों की कमियां हमें एकसरे की तरह बेहद साफ दिखने लगती हैं। सारा जहान देखा हो या न देखा हो हम कविता लिख जाते हैं, गीत गाते जाते हैं कि सारे जहां से अच्छा...। विनोबा इस गीत में थोड़ा कुछ और जोड़ कर एक बड़ी बात की तरफ इशारा कर देते हैं: सारे जहां से अच्छा 'क्योंकि' हिंदोस्ता हमारा। इस क्योंकि को अपने जीवन से अलग करना बहुत ही कठिन काम है। क्योंकि मेरा विचार, मेरा धर्म, मेरी संस्था, मेरा संगठन, मेरा समाज, मेरा

देश, मेरा बेटा-बेटी। कहीं दामाद भी। न जाने कितने सौ बरस पहले लिखे गए संस्कृत नाटक 'मृच्छकटिकम्' में एक ऐसा ही रिश्ता राजा के साले का भी सामने आ गया था। संक्षेप में कहें तो क्योंकि मेरा कोल्हू। गोल-गोल घूमते रहने से कुछ परिणाम तो आते ही हैं। कुछ तेल निकल आता है। थोड़ी-बहुत खली भी मिलती है। बैल को अगले दिन घूमते रहने के लिए प्रायः ठीक-ठाक चारा मिल जाता है। ठीक न हो तो फिर असंतोष भी।

मैं खोज तो नहीं पाया हूं, पर कहीं विनोबा ने कहा है कि वेदों में युद्ध का एक नाम 'मम सत्य' भी है। मेरा सच, बस मेरा सत्य। इसमें युद्ध के न सही, विवादों के बीज तो छिपे रहते ही हैं। पिछले वर्ष इन्हीं दिनों में अफ्रीका के एक भाग में एक भयानक वायरस फैला था— ई बोला। न जाने कितनी जानें गई थीं। तब हमारे मित्र दिलीप चिंचालकर ने ई बोला वायरस के साथ आई बोला वायरस भी कहा था, यानी मैं बोला वायरस।

फिर और न जाने कब हमें हमारा यह इतना प्रिय सत्य अचानक अर्धसत्य लगने लग जाता है। तब उसे छोड़ हम एकदम उससे उल्टे किसी सत्य से जुड़ जाते हैं। अपने आसपास टटोल कर देखें। छोटे से लेकर कई बड़े नाम विचारों की अदला-बदली में यहां से वहां घूमते मिल जाएंगे। यों यह कोई गलत बात भी नहीं है। जीवन यात्रा में एक विचार यात्रा

भी चलती है। इसे अच्छे अर्थों में देखें तो यह मन का, दिमाग का खुलापन भी लगेगा। कल तक हम एक विचार को मानते थे, आज हमें उसकी कुछ सीमाएं दिख गईं तो हमने उसे बिना मोह के छोड़ दिया। यह तो गुण ही कहलाएगा। कुछ बड़े अच्छे लोगों का जीवन बम बनाने से शुरू होता है पर बाद में उन्हें अध्यात्मिक ऊर्जा भी दिखाई देती है। लेकिन यदि यह गुण है तो दूसरे को भी ऐसी छूट, ऐसा अवसर देना होगा। वह तो हम देना नहीं चाहते। पहले किसी एक विचार से मित्रता और फिर उससे भिन्नता, उससे अलग होना हमें बस षड्यंत्र ही दिखता है।

इसलिए जीवन का अर्थ जानने के लिए यदि हम किसी एक विचार, एक धर्म, एक समाज, एक परंपरा में रहस्य खोजते रहे तो हम खुद तो कुछ संतोष शायद पा बैठें, पर इससे सबको अर्थमय जीवन जीने का रास्ता नहीं मिलने वाला। अच्छा जीवन, अगर अपने आप में साध्य या मंजिल बन जाए तो शायद हम उस तक पहुंच भी न पाएं। इसमें भटकाव की बहुत गुंजाइश बनी रहेगी।

पिछले दौर में एक खास तरह की नई पढ़ाई से पढ़ कर दो पीढ़ियां तो निकल ही चुकी हैं। इस पीढ़ी के ज्यादातर सदस्य बंगलोर, हैदराबाद, पुणे और बाहर संयुक्त राष्ट्र अमेरिका आदि में जा बसे हैं। यदि सार्थक जीवन का अर्थ बस केवल अर्थ, यानी रुपया-पैसा है तो समाज के इस हिस्से के पास

उसकी कोई कमी नहीं है। लेकिन जीवन का अर्थ उनके हाथ भी आसानी से नहीं लग पाता। उनके पैसे का एक भाग जीवन जीने की कला सीखने पर भी खर्च हो चला है। इस कला को सिखाने वाले भी कोई एक नहीं अनेक लोग हैं। इनके कपड़ों के रंग भी शुद्ध सफेद से लेकर गेरुआ, भगवा सब हैं। हजारों नहीं लाखों लोग कहीं योग या योगा करते हैं, ध्यान लगाते हैं, जाप या चांटिंग करते हैं। यह धर्म की नई दुनिया भी है, धर्म का नया बाजार भी और धर्म का नया मॉल भी। इसमें दोसा, परांठा कब से नहीं खाया— पूछने वाले गुरु भी हैं। समाज के काम से जुड़े लोगों को 'चेंज', बदलाव, परिवर्तन जैसे शब्दों में विशेष आकर्षण मिलता है। धर्म के इस बाजार में भी चेंज शब्द आ गया है— 'यस आई कैन चेंज' भी यहां चला है और अब 'न्यू' भी लग गया है इसमें।

और इसमें भी कोई संदेह नहीं कि इन सब कामों से हजारों लोगों को कुछ न कुछ लाभ भी हुआ ही है। उनका भटकता हुआ मन कुछ शांत हुआ होगा। तो कलियुग में धर्मयुग का यह अवतरण अच्छा ही मान लेते हैं। लेकिन धर्मयुग से मिलता-जुलता एक और शब्द है— युगधर्म। इस युग का मुख्य धर्म है, इस समय का मुख्य विचार है— विकास। हर चीज का विकास। संगठन का, देश का, शहरों का विकास, गांवों का विकास, बाल विकास, महिला विकास। सब तरह के विचारों के झंडे इस विकास के झंडे में आकर समा जाते हैं। इस युगधर्म

ने जीवन के अर्थ को भी प्रभावित किया है। हम सब चाहे जो भी काम करते हों, हम सब पर जाने-अनजाने इस विकास की छाया पड़ती ही है। यह अनायास, अकारण नहीं है कि एक बाबा हरिद्वार में 'फूड पार्क' बनाते हैं और दूसरे बाबा अमेठी में इसी नाम से, मिलते-जुलते नाम से नहीं, इसी नाम से फूड पार्क बनाते हैं। एक बाबा का फूड पार्क बन जाता है पर अमेठी का फूड पार्क राजनैतिक पचड़ेबाजी में फंस जाता है। पर दोनों का मन एक ही है। विकास की इस दौड़ में हम सबको दौड़ना ही पड़ता है। इस चूहा-दौड़ में दौड़ना ही है। पीछे रहें या आगे, यह विचित्र दौड़ हमें चूहा तो बनाती ही है।

अर्थमय जीवन की चर्चा तो काफी गंभीर होनी चाहिए। हमारी यह चर्चा कोल्हू, बैल और चूहे जैसी घटिया हो गई है तो आप सबसे क्षमा मांगते हुए मैं थोड़ा-सा लिफ्ट कर देता हूँ। इसे थोड़ा ऊपर उठाता हूँ। अभी तीन दिन पहले ही 'लिफ्ट करा दे के' गायक को भारत की नागरिकता मिली है। उन्होंने बयान में कहा है कि यह उनके जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है। अदनान सामी का जीवन सफल हो गया है, अर्थमय बन गया है उनका जीवन।

क्या सचमुच ऐसा है ? अर्थमय जीवन की ये हमारी अपनी छोटी-छोटी परिभाषाएं हैं। भारत की इस मिली-मिलाई नागरिकता को तो कई लोग छोड़ यूरोप, अमेरिका, कैंनेडा की नागरिकता पाने आतुर हैं। फिर आज दुनिया में ऐसे लोगों की

संख्या भी सबसे ज्यादा हो गई है, जिनकी कोई नागरिकता ही नहीं बच पाई है। युद्ध, गृह युद्ध और बहुत दूर के दादा देशों की दखलंदाजी से कुछ लाख लोग शरणार्थी बने इधर से उधर भटक रहे हैं। उन पर आज क्या बीत रही होगी, हम सोच भी नहीं सकते। ऐसी दुनिया में सिर पर छत तो दूर की बात है, सिर पर एक आड़ और भरपेट नहीं, मुट्ठी भर अगला भोजन मिल जाए उतना ही अर्थ रह जाता है उनके जीवन का। गांधीजी ने तो आजादी की लड़ाई के बीच में भी भूखे के भगवान की कल्पना कर दिखाई थी। उसके सामने भगवान भी रोटी के रूप में आने के अलावा कोई और रूप धारण कर ही नहीं सकता। हिम्मत भी नहीं कर सकता।

अर्थमय जीवन के इस रोटी-रूप को लेकर भी दुनिया भर में अनेक विचारकों, चिंतकों, क्रांतिकारियों ने कई तरह के शास्त्र रचे हैं, उन्हें अमल में उतारने के संगठन भी बनाए हैं। पर उन समाजों में भी जीवन का अर्थ एकदम साफ समझ में आ गया हो— इसका कोई पक्का रूप दिखता नहीं।

आज से कोई 25-30 बरस पहले हम लोग पानी, तालाब आदि पर कुछ काम कर रहे थे। उस विषय को समझने के लिए इधर-उधर जिज्ञासा में भटकते थे। हमारे कारण कुछ और साथी भी इसमें चीजें जुटाने में हमारे साथ हो लिए। राकेश दीवान तालाबों को समझने मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र की सीमा पर बैतूल इलाके में घूम रहे थे। वहां उन्होंने एक राजा

का किस्सा सुना। तालाब तो इस किस्से में आएगा ही, पर इसमें पहले तो जीवन के अर्थ की खोज ही थी।

राजाओं का, प्रायः शासन करने वालों का स्वभाव जरा अलग ही रहता है। सांसारिक राजा को न जाने क्या हुआ कि उन्हें अपने जीवन का अर्थ जानने की इच्छा हो गई। किसी सलाहकार ने उन्हें बता दिया कि बस ब्रह्म जान लो, सब अर्थ पता चल जाएगा। "तो तुम बता दो ब्रह्म के बारे में," राजा ने उससे कहा था। यह तो बड़ा काम है राजा, हमें तो पता नहीं ब्रह्म का। पर इतना तो पक्का है कि ब्रह्म जान लो तो सब पता चल जाएगा।" कौन बताएगा फिर ब्रह्म नाम की बला ? सलाह मिली कि राज्य के सारे ज्ञानियों को, संतों को, साधुओं को जमा करो। सम्मेलन करो उस समय के किसी विज्ञान भवन में। उनमें से कोई न कोई तो ज्ञान दे ही देगा, ब्रह्म बता ही देगा !

ब्रह्म जानने, जीवन का अर्थ जानने, राजा का जीवन अर्थमय बनाने के लिए विराट आयोजन की तैयारियां शुरू हुईं। राज्य के ही नहीं राज्य से बाहर के भी ज्ञानियों का न्यौता भेजा गया। अब ये शासन करने वालों की भी तो कुछ सनक होती है। ब्रह्म ज्ञान बताने का नहीं, ब्रह्म ज्ञान सुनने का तरीका क्या होगा— यह तय किया राजा ने। गोलमेज, राउंडटेबल कांफ्रेंस नहीं। राजा ने कहा कि सम्मेलन स्थल पर मैं अपने भव्य सफेद घोड़े के साथ खड़ा रहूंगा। एक—एक कर ज्ञानी आएंगे। मैं

रकाब पर एक पैर रखूंगा और घोड़े पर चढ़ूंगा। दूसरा पैर दूसरी तरफ की रकाब में जाएगा ही बस इतनी ही देर में ज्ञानी को ब्रह्म के बारे में बताना होगा। नहीं बता पाया तो मैं अपनी एड़ी से घोड़े को इशारा करूंगा। घोड़ा फुर्र से उड़ जाएगा। जो इतने क्षणों में, इतने सेकिंड में ब्रह्म ज्ञान दे दे—उसे भारी इनाम। जो न बता पाए इतनी—सी देर में, उसे कुछ सजा भी देने की बात थी। पर उस विस्तार में जाना जरूरी नहीं। रकाब में पांव, ब्रह्म दिखांव— यह था नारा राजा का।

लंबा किस्सा थोड़े में समेटना हो तो यही बताया जा सकता है कि राजा का पांव रकाब में जाता और घोड़ा फुर्र से उड़ जाता। राजा का जीवन अर्थमय कैसे बने, इस चक्कर में कई लोगों को कोड़े खाने पड़े। लेकिन फिर एक ज्ञानी आया। राजा ने पैर उठाया ही था कि उसने जोर से कहा, “अकाल पड़ा है, तुझे ब्रह्म की पड़ी।” बस। राजा घोड़ा नहीं दौड़ा पाया। उतर गया नीचे। क्या पता उसे ब्रह्म दिख गया होगा। फिर उस इलाके में राजा—प्रजा ने, इन ज्ञानियों ने, कोड़े खाने वालों ने भी मिल कर इतने सारे तालाब बनाए कि फिर वहां कभी ऐसा अकाल पड़ा नहीं।

इस तरह के किस्से जीवन का अर्थ जानने की अलग—अलग खिड़कियां खोलते हैं। इससे यह भी प्रश्न उठता है कि खुद अकेले ही जीवन का अर्थ जान लेना है या और भी कई को साथ लेकर इसे पाना है। अकेले किसी गुफा में

अर्थमय जीवन का लड्डू खा लेना है यानी एकवचन या बहुवचन में, सबके साथ दावत देकर। अकेला ऊपर उठ जाना है या बहुतों के साथ थोड़ा-सा ऊपर उठना है। फिर इस किस्से में एक परत समय की, काल की भी है। इस मीठे रहस्य को कुछ समय के लिए पाना है या बड़े लंबे समय के लिए।

अर्थ की खोज आप लगभग हर समाज में कुछ हजार साल पुराने शास्त्र के तरीके से करते हैं। शास्त्री के तरीके से करते हैं या एक मिस्त्री के तरीके से— यह भी सोचना पड़ेगा। फिर एक तरीका है सोचने का। सोचना शब्द सरल लगे तो इसे कठिन बना लें— चिंतन करने का भी एक तरीका है। चिंतन से बात जीवन पर आती है।

यह जीवन अपने आप में क्या बला है। हमें कब पता चलता है कि हम जीवन जी रहे हैं ? सांस तो हम जन्म से पहले ही लेने लगते हैं। हमारा प्राण, हमारा हृदय तो न जाने कब बन जाता है। जीव विज्ञान या शरीर विज्ञान की भी समझ जरूरी नहीं। जन्म के बाद एक दौर तो अबोध बने रहने का ही होता है। पर अबोध का 'अ' तो हट जाता है, बचपन में ही, बोध तो हाथ नहीं आता। लगता है तीन अक्षर के इस शब्द अबोध का 'अ' हटते ही पूरे तीनों अक्षर हमारे हाथ से छूट जाते हैं।

न हम अबोध रहते हैं न हमें बोध हो पाता है कि हम कौन हैं, कहां से आए हैं, कहां जाएंगे। हम भटकते रह जाते हैं। मंजिल का तो पता नहीं रहता पर हम उस मंजिल तक की यात्रा का भी मजा नहीं ले पाते, आनंद नहीं ले पाते। शिकायत करते रह जाते हैं, खुद अपने से, अपने दुश्मनों से तो छोड़िए, अपने मित्रों से, अपने समाज से और जिसे जालिम जमाना कहते हैं उससे तो न जाने कितनी शिकायतें करते ही चले जाते हैं। हमारी पूरी जीवन यात्रा, लगता है शिकायतों के ईंधन से चल पाती है। और फिर हमारी जीवन की यह गाड़ी इतना काला धुंआ छोड़ती है कि दूसरों के फेफड़े तो खराब होते ही हैं, खुद हमारे फेफड़े भी उससे बच नहीं पाते। जो पहले कहा है वैसे कोल्हू के बैल हम बन जाते हैं। वही किरस्सा पुराना है। फिर भी सजन झूठ बोलते रहते हैं, लड़कपन खेल में खोते रहते हैं, जवानी नींद भर सोते रहते हैं और बुढ़ापा देख रोते रहते हैं। कवि शैलेन्द्र के ये बोल निकले तो बंबईया फिल्म से हैं। पर इनमें आपको दर्शन की एक लंबी परंपरा का निचोड़ दिखेगा।

पता नहीं कितने हजार बरस पहले एक ऋषि ने एक खास तरह की चटनी बनाई थी। उन दिनों ब्रांडनेम का जमाना नहीं था, फिर भी इस चटनी को, प्राश को उस ऋषि का ब्रांडनेम, ठप्पा मिल गया। आज उसे भले ही कोई भी बनाए, नाम तो उसे यही देना पड़ता है— च्यवनप्राश। पर हम यहां

इस चटनी की चर्चा स्वास्थ्य वाले प्रसंग में नहीं कर रहे हैं। आयुर्वेद बताता है कि इस चटनी में पूरी 45 तरह की चीजें, जड़ी-बूटियां, अत्ते-पत्ते, गुड़, आंवला, फल-फूल आदि डाले जाते हैं।

मामूली किस्म की सर्दी-खांसी आदि से बचने, शरीर की थोड़ी प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने वाली इस चटनी में 45 चीजें पड़ती हैं तो जरा सोचिए, हिसाब तो लगाइए कि एक भरा-पूरा जीवन अर्थमय बनाने में कितनी सारी चीजों की जरूरत पड़ती होगी। इसमें भी हम शरीर शास्त्र की तरफ नहीं जाएं, वह हमारा काम नहीं, योग्यता तो बिलकुल नहीं। पर एक जीवन कैसे सार्थक बनता है, इसमें कितनी बातें जुड़ती हैं, घटती हैं, गुणा होती हैं, भाग होती हैं— सब जरा सोचें तो। सिर्फ अच्छी परिस्थितियां, अच्छी राय, संगतियां, अच्छा परिवेश, अच्छे अवसर ही नहीं, एक भरे-पूरे जीवन में विरोधी परिस्थितियां, विसंगतियां, जय-पराजय, मन की शांति और आसपास का कोलाहल, हल्ला-गुल्ला यानी नई भाषा में कहें तो जिंदाबाद-मुर्दाबाद सबका मिला-जुला रूप, आकार लेकर बनता है— हमारा जीवन।

कुछ हजार साल का इतिहास उठा कर देखें। महाभारत में एक पक्ष जीत जाता है। पर उस जय का परिणाम क्या है ? युधिष्ठिर को उस जय से क्या मिलता है ? वे कहते हैं, यह जय तो उस पराजय से भी बुरी है। जय-पराजय तो

छोड़िए, मृत्यु तक से जीवन बनता है। अपना जीवन भी और आने वाले दौर का जीवन भी। ऐसे कई उदाहरण हैं, यहां उन्हें दोहराने की जरूरत नहीं। पर आज से 67 बरस पहले यानी सन् 1948 को इसी महीने की तीस तारीख को एक जीवन अपनी मृत्यु से कितना अर्थमय बन गया था।

तो 45 चीजों से बनी एक साधारण चटनी, प्राश और यह हमारा जीवन। उस तराजू पर हम जीवन तोलें तो एक अंदाज लगेगा कि अपने जीवन को पौष्टिक, स्वादिष्ट या कहें सार्थक, अर्थमय बनाने में लाखों, करोड़ों चीजों को छानना, भूनना, कूटना, उबालना, घोंटना पड़ेगा। और कुछ नहीं तो पंचमहाभूतों की जरूरत पड़ेगी ही। पर यह प्रकृति बड़ी ही मजेदार चीज है। उसने जीवन को बड़ा सरल बनाया है। जीवन तक जाने से पहले प्रकृति की बनाई एक और चीज देखें। बरगद का पेड़। और उसका बीज ? राई के दाने से भी छोटा। इतने से बीज से ऐसा विशाल बरगद। वह भी और पेड़ों की तरह एक तने वाला नहीं। यहां तो तने भी अनगिनत हैं। उमर भी ऐसी सार्थक, इतनी अर्थमय कि 5-10 पीढ़ियां उस बरगद के नीचे छाया पा लें। उसकी शाखाओं में पक्षियों की अनगिनत जातियां घोंसला बना लें और लाखों चिड़ियां खाना खा लें। कपड़ा उन्हें चाहिए नहीं, रोटी और मकान का इंतजाम पक्का। हमारा तो एक नेता इतना करने— रोटी, कपड़ा और

मकान जुटाने के नाम पर क्या-क्या नहीं करता। फिर भी कुछ नहीं कर पाता।

वापस लौटें अर्थमय जीवन जीने के लिए। ऐसा जीवन बनाने के लिए कितनी चीजें चाहिए। च्यवनप्राश में तो 45 चीजें लगेंगी ही। तो उस गुणा-भाग से यहां तो लाखों करोड़ों चीजें चाहिए। कहां मिलेंगी, कैसे मिलेंगी, कितने दाम में मिलेंगी सबको। जीवन जी रहे सारे जीवों को यह सब एक दाम पर मिल पाएगी ? यह सब मिल गया तो सार्थक जीवन यात्रा की प्रामाणिकता क्या होगी। मामूली रेल-यात्रा, हवाई जहाज की यात्रा भी आज तो बिना आई.डी.प्रूफ, आधार कार्ड के आप कर नहीं सकते तो फिर एक सार्थक लंबी जीवन यात्रा क्या बिना आई.डी. के हो पाएगी ?

तो क्या-क्या चाहिए की लंबी सूची बनाने के पहले एक और बाजारू उत्पादन पर लौटें। च्यवनप्राश से यह जरा अलग चीज है। फ्रांस में सुगंध का बड़ा कारोबार करने वाली एक कंपनी है शनेल। बनाने को तो ये न जाने कितनी चीजें बनाती है, शायद एकाध करोड़ में बिकने वाली हाथ घड़ियां भी। पर इसकी सबसे ज्यादा प्रसिद्धि 'शनेल-5' नाम की एक सुगंध से हुई है। कोई तीन अंगुल की छोटी-सी खुबसूरत शीशी का दाम होता होगा पांच हजार रुपया।

दुनिया भर में शौकीन लोगों के बीच नाम कमाने वाली इस महंगी सुगंध में च्यवनप्राश की तरह ही एक निश्चित

मात्रा में निश्चित चीजें शामिल हैं। जैसे गुलाब की पंखुड़ियां कितने टन-मन आदि। यह सब सामग्री फ्रांस के खेतों से लेकर दुनिया भर के वर्षा वनों, घने जंगलों से ली जाती है। लेकिन यदि किसी एक वर्ष इस सूची में से एक भी चीज उस मात्रा में न मिल पाए, उस गुणवत्ता की न हो तो उस बार शनैल-5 का उत्पादन रोक दिया जाता है। इतनी महंगी सुगंध की सार्थकता उस कंपनी को दिखती नहीं। पर जीवन की सुगंध ? प्रकृति जीवन की सार्थक सुगंध के साथ शनैल-5 जैसा काम करे तो शायद जीवन चले ही नहीं। किसी का भी जीवन ठप्प हो जाए।

जीवन को सार्थक बनाने में तो क्या-क्या चाहिए के बदले क्या-क्या नहीं चाहिए वाली सूची भी काम दे जाती है। आंखें नहीं, कान नहीं, मुंह नहीं— यानी अंधी, बहरी और गूंगी होने के बाद भी अमेरिका की हेलेन केलर ने न सिर्फ अपने जीवन को भरपूर अर्थ दिया, उन्होंने आने वाले ऐसे लाखों लोगों को रास्ता भी दिखाया। उनकी जीवनी दुनिया भर में पढ़ी जाती है, उनकी सूक्तियां न जाने कितनों को कठिन दौर में, घोर निराशा में संबल और सहारा देती हैं। इसी तरह का एक और उदाहरण। लुई ब्रेल ने अपने बचपन में इस दुनिया को, उसके सब तरह के रंगों को, पूरे इंद्रधनुष को अच्छी तरह से देखा था। पर फिर आंखों की रोशनी चली गई। घुप्प अंधेरा

छा गया। उजाला देख लेने के बाद तो अंधेरा और भी ज्यादा काला हो जाता है।

लुई ब्रेल ने अपने अंधेरे में खुद उजाला बनाया। एक ऐसी लिपि, स्क्रिप्ट खोजी, जिसमें लिखी गई भाषा नेत्रहीन भी पढ़ सकें। इतने बड़े काम के बाद भी उन्हें अपने जीते जी कोई बहुत वाहवाही नहीं, कहीं कोई प्यार नहीं मिला। लेकिन उनके सार्थक जीवन का महत्त्व उनकी मृत्यु के बाद फ्रांस को भी दिखा और फिर पूरी दुनिया को भी। आज न जाने कितनी भाषाएं लुई ब्रेल की बनाई लिपि में लिखी जाती हैं, नेत्रहीनों द्वारा पढ़ी जाती हैं। हिंदी भी।

हेलन केलर, लुई ब्रेल और ऐसी न जाने कितनी विभूतियां हमें बताती हैं कि हमारे जीवन में चाहे जितनी चीजें कम हों— पैसा, प्यार, मान-सम्मान, अवसर, तरक्की— कोई भी चीज कम हो, न हो तो भी जीवन नहीं रुकता, जीवन रुकना नहीं चाहिए। आपद यानी संकट। तो ऐसा कोई जीवन नहीं, जिसमें कल या आज आपद, आफत न आई हो, या कल न आए। आपात्काल लगाने की हैसियत तक पहुंची इंदिरा गांधी का जीवन भी बिना आपद का था नहीं।

मेरे पिताजी कवि थे। उनकी एक बहुत छोटी-सी कविता है जिसमें वे बताते हैं कि निरापद कोई नहीं है। न तुम, न वे, न मैं। किसी की भी जिंदगी दूध की धोई नहीं है। फिर अंत में वे लिखते हैं : दूध किसी का धोबी नहीं है ! हम को

खुद अपना धोबी बनना पड़ेगा, खुद अपनी जिंदगी खुद धोनी पड़ेगी— अगर हमें उस पर लगे दाग दिखने लगे। दूसरों के दाग तो हमें बराबर दिखेंगे ही। खैर, इस नई कविता से एक पुरानी कविता भजन तक चलें।

कबीर का एक सुंदर भजन है— 'वा घर सबसे न्यारा।' कुमार गंधर्वजी ने इसे और भी सुंदर बना दिया है अपने स्वर से। इस घर से उस घर का परिचय है भजन में। बहुत—सी ऐसी बातें जो यहां इस जीवन में भरी पड़ी हैं, उस न्यारे घर में वे हैं नहीं। कबीर अपनी विशिष्ट शैली में बताते जाते हैं कि उस न्यारे घर में वेद भी नहीं है। इस जीवन में इस घर में तो वेद, गीता, गुरुग्रंथ, कुरान, बाइबिल सब कुछ है। और इसी सब को लेकर तरह—तरह के झगड़े भी हैं जो होने नहीं चाहिए, फिर भी होते ही रहते हैं। बंद ही नहीं हो पाते। उस न्यारे घर में न मूल है, न फूल, न बेल है न बीज। धर नहीं, अधर नहीं। न बाहर भीतर जैसा कुछ है। न ज्ञान है न ध्यान है। वहां पाप भी नहीं है और सबसे बड़ी बात तो कबीर यह कह जाते हैं कि वहां पुण्य का पसारा भी नहीं है। हमारे जीवन में पुण्य का सचमुच बड़ा पसारा हो जाता है। यह दिखता तो बड़ा सार्थक है पर प्रायः इसका पसारा इतना हो जाता है कि फिर हमें अपने पुण्य के आगे बाकी सब लोग पापी ही दिखते हैं। अपने जीवन की सार्थकता और शेष सारे जीवन

की निरर्थकता। इस वृत्ति से मंत्रियों के मुखिया और देश के प्रधान भी नहीं बच पाते।

तो उस न्यारे घर में यह सब नहीं है। वहां हम कब जाएंगे, जाएंगे भी कि नहीं, पता नहीं। पर इस घर में तो हम सब रह ही रहे हैं। थोड़ी-थोड़ी कोशिश करें तो कबीर के इस न्यारे घर के छप्पर से दो-चार तिनके तो हम अपने इस जीवन में ला ही सकते हैं। इसी भजन की एक पंक्ति में कबीर बताते हैं कि उस न्यारे घर में बिन ज्योति उजियारा है।

प्रारंभ में हमने ऐसी सभाओं में एक दीया जलाने की कुछ बातें की थीं। जहां जलाया जा सके, वहां लोग दीया जलाएं ही। पर न जल पाए आज की तरह तो कबीर के उस न्यारे घर की याद करें। मुझे पूरा भरोसा है कि अर्थमय जीवन में, जीवन के अर्थ को समझने की इस छोटी-सी कोशिश में आप सबकी उपस्थिति बिन ज्योति उजियारा कर देगी।

अनुपम मिश्र

सेडिड द्वारा आयोजित व्याख्यान माला में चार जनवरी, सन् दो हजार सोलह को दिया गया भाषण।